हिन्दी गद्य का विकास

गद्य : स्वरूप

संस्कृत साहित्यशास्त्र में गद्य को गद्य काव्य के अर्थ में ग्रहण किया गया है, इसलिए भामह, दण्डी, वामन से लेकर विश्वनाथ तक सभी आचार्यों ने गद्य के प्रभेदों में आख्यायिका, वृत्त, कथा आदि का उल्लेख किया है। भामह ने गद्य को प्रकृत, अनाकुल, श्रव्य शब्दार्थ पद्वृत्ति कहा है (काव्यालंकार–1,25) और दण्डी ने 'अपाद'–गण–मात्रारहित (काव्यादर्श –1, 13)। वामन ने परिभाषा न देकर उसकी विशेषताओं को दुर्ज्ञेय तथा उसकी रचना को गठित बनाते हुए 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' (गद्य को कवियों की कसौटी कहते हैं) उद्धरण देकर साहित्य में उसकी महत्ता का निर्देश किया है (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति – 1, 3, 21)। 'साहित्य दर्पण' (विश्वनाथ) में गद्य की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। केवल उसे काव्य कहकर उसके चार भेद बताये गये हैं– मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक। मुक्तक समासरहित होता है। वृत्तगन्धि में छन्द की गन्ध आती है अर्थात् उसके वाक्यों और वाक्यांशों में प्रायः छन्दों के गण– मात्रा का विधान पाया जाता है, उत्कलिकाप्राय गद्य दीर्घ समासयुक्त होता है तथा चूर्णक में छोटे – छोटे समासों का प्रयोग होता हैं, (सा.द.–6, 330, 331)। विश्वनाथ ने गद्य के अन्तिम तीन भेद वामन के ही आधार पर दिये हैं। मुक्तक नाम का भेद वामन ने नहीं किया।

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में गद्य इन भेदों की, जिन्हें शैली का भेद समझना चाहि,, किंचित् अधिक स्पष्ट मिलती है। पद्य भाग से युक्त या उसके समान प्रतीत होने वाला गद्य जिसमें वृत्त या छन्द की गन्ध मिले, वृत्तगन्धि होता है, दीर्घ समास से रहित और ललित पदों से युक्त गद्य चूर्णक कहलाता है तथा इससे विपरीत दीर्घ समासयुक्त और उद्धत पदों से युक्त गद्य को उत्कलिकाप्राय कहते हैं (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति–1, 3, 22, 25)। (हिन्दी साहित्य कोश, भाग –1, पृ. 253–254)

संस्कृत साहित्यशास्त्र में कथा, आख्यायिका, आख्यान आदि के लिए ही गद्य का उपयोग बताया गया है। कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त विचारात्मक लेखन के लिए गद्य के साहित्यिक प्रयोग तथा शास्त्रीय और वैज्ञानिक विषयों के लिए उसके व्यावहारिक उपयोग की ओर संकेत नहीं किया गया है।

गद्य की सबसे सरल, व्यापक और सर्वमान्य परिभाषा यही हो सकती है कि जिस शब्दार्थयुक्त भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है, वही गद्य है। इससे भिन्न पद्य में असाधारण भाषा का प्रयोग होता है। इसमें विशेष प्रकार के क्रमबद्ध ताल और लय की योजना के लिए वाक्यगत शब्दों के साधारण क्रम में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त गद्य का लक्ष्य सहज, सरल, सीधे और निश्चित प्रयोजनयुक्त, भामह के शब्दों में प्रकृति और अनाकुल शब्दार्थ को प्रेषित करना है। पद्य का भी व्यवहार निश्चित प्रयोजन के लिए हो सकता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय शास्त्र और विज्ञान के विषय भी पद्य में लिखे जाते थे। परन्तु उसमें सर्वत्र शब्दार्थ की सरलता और सीधापन सुरक्षित नहीं रह पाता था, क्योंकि शब्दों की विशिष्ट

छन्दोबद्ध योजना के लिए उसमें कृत्रिमता, भंगिमा और वक्रता आ जाना स्वाभाविक है। अतः गद्य–पद्य का भेद स्पष्ट है। काव्य की सौन्दर्यवृत्ति से सर्वथा असंपृक्त रहकर भी दोनों समानुरूप नहीं हो सकते, उनके रूप और प्रकृति का अन्तर निर्विवाद है। इस दृष्टि से पद्य और काव्य में अन्तर किया गया है। परन्तु जैसा कि साधारणतः होता है, यदि काव्य को अनिवार्यतः पद्यबद्ध न मान लिया जाय तो गद्य और काव्य में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती । काव्य के अनेक रूप गद्य में ही रचे जाते हैं। फिर भी गद्य रचना के बाह्य रूप का ही नहीं, उसकी आन्तरिक प्रकृति का द्योतक है। हम अनेक पद्यबद्ध काव्यकृतियों को गद्यात्मक कहते हैं, क्योंकि उनमें संवेदनशीलता की अपेक्षा बोधवृत्ति की प्रधानता होती है। गद्य मुख्यतः बोध, व्याख्या, तर्क, वर्णन और कथा के क्षेत्रों में ही सीमित है।

प्रयोग की दृष्टि से गद्य का साधारण रूप वह है जो व्यावहारिक प्रयोग में आता है। दो व्यक्तियों के बीच सामान्य बातचीत से लेकर बड़ी–बड़ी गोष्ठियों और सभाओं के कलापूर्ण प्रभावशील भाषणों तक , कुशलक्षेम सम्बन्धी साधारण पत्र–व्यवहार से लेकर शास्त्र और विज्ञान के विविध विषयों के विश्लेषण, विवेचन, अनुशीलन और अनुसंधानपूर्ण प्रबन्धों तक, बड़े–बड़े धर्माचार्यों के उपदेशों तथा कथावाचनों से लेकर चबूतरे पर बैठकर परस्पर गप्प लगाने तक में गद्य के व्यावहारिक स्वरूप का प्रयोग होता है। इन सब गतिविधियों में गद्य के अनेक रूपों का उपयोग होता रहता है। इन अनेक रूपों को एक परिभाषा में बाँधना भी सरल नहीं है। साधारण जीवन में प्रयोग के साथ ही गद्य का उपयोग रचनात्मक लेखन में भी पूरी तन्मयता के साथ होता है। अभिव्यक्ति का जितना प्रभावशाली रूप पद्य है उतना ही गद्य भी। इतना ही नहीं विश्व में अनेक विषय ऐसे हैं जिनका विश्लेषण तथा अनुशीलन गद्य में ही संभव है। इसलिए गद्य हमारे सांस्कृतिक जीवन की पहचान बन गया है।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य इतना कम तथा अविकसित दशा में मिलता है कि उसे प्रायः नगण्य–सा समझा जाता है। पुराने समय में हिन्दी में गद्य का विकास क्यों नहीं हो पाया, इसका कारण खोजने का प्रयास विद्वानों ने किया है। कुछ लोगों का मानना है कि भारत की लगभग हर भाषा के साहित्य का आरम्भ पद्य–रचना से ही हुआ है, अतः हिन्दी में भी ऐसा होना स्वाभाविक है। कुछ विद्वान यह भी सोचते हैं कि हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा और हिन्दी साहित्य ने काफी कुछ संस्कृत साहित्य से लिया इसलिए संस्कृत की तरह यहाँ भी पद्य–रचना को ही अधिक प्रश्रय मिला। किन्तु यह धारणा भ्रामक है क्योंकि संस्कृत में 'काव्य' शब्द का प्रयोग– गद्य और पद्य – दोनों के लिए होता था तथा गद्य को कवियों की कसौटी समझा जाता था। साथ ही प्राचीन काल में संस्कृत में उच्च कोटि का गद्य लिखा गया। हिन्दी में गद्य के विकसित न होने के कारण शायद यह रहा कि आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में हमारे यहाँ जीवन का दृष्टिकोण बौद्धिकतापरक, यथार्थवादी, वस्तुवादी और व्यावहारिक नहीं रहा जबकि गद्य के विकास के लिए इस प्रकार की जीवन– स्थितियाँ आवश्यक हैं।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य बहुत विकसित नहीं था। जब हम आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास पर दृष्टिपात करते हैं तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी गद्य के विकास में ईसाई प्रचारकों ने काफी योगदान दिया, क्योंकि वे भारतीय जनता तक उसी की भाषा में अच्छी तरह पहुँच सकते थे। राजा राममोहन राय तथा उनके ब्रह्म समाज ने भी हिन्दी गद्य के विकास में योगदान दिया। उन्होंने वेदान्त–सूत्रों

का हिन्दी गद्य मे अनुवाद कराया तथा ''बंगदूत'' नाम से हिन्दी में एक पत्रिका भी निकाली। इसी काल में हिन्दी में पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1826 ई. में पं. जुगल किशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में हिन्दी का पहला पत्र ''उदन्त मार्तण्ड'' नाम से कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसी परम्परा में ''बनारस अखबार'' (राजा शिवप्रसाद के सम्पादकत्व में), ''सुधाकर'' (तारामोहन मिश्र के सम्पादकत्व में), ''बुद्धिप्रकाश'' (मुंशी सदासुख लाल के सम्पादन में) आदि अनेक पत्र निकले जिन्होंने हिन्दी गद्य की परम्परा को समृद्ध किया।

आधुनिक हिन्दी गद्य का सही विकास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उदय के साथ होता है। भारतेन्दु ने अपनी गद्य–शैली को अत्यन्त व्यावहारिक और समय की आवश्यकता के अनुरूप ढ़ाला। उन्होंने हिन्दी को न तो संस्कृत तत्सम शब्दावली से बोझिल होने दिया न उर्दू– फारसी के शब्दों के सार्थक प्रयोग को हतोत्साहित किया। उन्होंने विषयवस्तु, भाव–विशेष एवं रूप–विशेष के अनुसार विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। प्रणय, विरह या शोक के प्रसंगों में उनकी शैली अत्यन्त कोमल और मधुर हो जाती है तो हास्य के प्रसंगों में चुलबुलेपन से युक्त हो जाती है। वस्तुतः भारतेन्दु भाषा के मर्म को समझने वाले प्रतिभाशाली रचनाकार थे तथा उसे विषय, भाव एवं प्रसंग के अनुसार ढ़ालने में माहिर थे। भारतेन्दु जी के समकालीनों में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह ऐसे लेखक रहे हैं जिन्होंने हिन्दी गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों में देवकीनन्दन खत्री, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्री निवासदास, राधाकृष्ण दास, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रद्धाराम फिल्लौरी, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि ने उल्लेखनीय रचनाकर्म तथा हिन्दी गद्य की परम्परा को समृद्ध किया । इन लेखकों ने गद्य की अनेक विधाओं में लिखा तथा हिन्दी के प्रचार–प्रसार को अपने रचनाकर्म का लक्ष्य भी बनाया। उस काल में देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' तथा 'चन्द्रकान्ता संतति' का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। लोगों ने इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी, यह हिन्दी गद्य की शक्ति का प्रमाण है। बालमुकुन्द गुप्त, बालकुष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने उच्च कोटि के निबंध लिखकर इस विधा को गरिमा प्रदान की।

इस काल में हिन्दी गद्य के विकास में आर्य समाज आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस आन्दोलन ने धर्म, समाज, शिक्षा, साहित्य आदि क्षेत्रों में वैचारिक क्रान्ति की। आर्य समाज ने उत्तर भारत की बौद्धिक चेतना को झकझोर दिया। बौद्धिक चेतना का संबंध गद्य से सीधा होता है, क्योंकि विचार– विमर्श, तर्क–वितर्क, चिन्तन–मनन के लिए जो बौद्धिक प्रयास होते हैं वे गद्य में ही संभव है। स्वयं दयानन्द सरस्वती ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा जिसमें उन्होंने वैदिक धर्म की व्याख्या के बाद विभिन्न वेद–विरोधी धर्म–सम्प्रदायों का खण्डन किया है। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि आर्य समाज ने अपने सुधार कार्यो के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास में योगदान दिया। आर्य समाज के प्रभाव के कारण ही हिन्दी में अनेक जीवन–चरित्रों, इतिहास–ग्रन्थों, साहित्यिक–ग्रन्थों, धार्मिक–ग्रन्थों एवं शास्त्रीय–ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी में अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई।

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नयी गति प्रदान की। हिन्दी का प्रचार–प्रसार तथा हिन्दी के स्वरूप का स्थिरीकरण जैसे द्विवेदीजी के जीवन का लक्ष्य था। उन्होंने 1900 ई.

में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। एक समय 'सरस्वती' पत्रिका भारत की हिन्दी चेतना की सबसे सशक्त मंच बन गयी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने समकालीन लेखकों को प्रेरित कर नये–नये विषयों पर लिखवाया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हिन्दी की प्रगति तभी सम्भव है, जब उसमें विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, तकनीक जैसे विषयों में साहित्य उपलब्ध हो। गद्य के संबंध में उन्होंने एकरूपता, व्याकरण के दोष–परिष्कार,, शब्दों के उपयुक्त प्रयोग आदि का पूरा ध्यान दिया।

हिन्दी गद्य का प्रौढ़तम रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके परवर्ती लेखकों की रचनाओं में मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंधो में जहा विवेचन–शैली की गम्भीरता का सर्वोत्कृष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है, वहां जयशंकर 'प्रसाद', प्रेमचन्द, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा आदि की शैली में गद्य की सरसता, चित्रात्मकता एवं कलात्मकता के श्रेष्ठ उदाहरण होते हैं। वस्तुतः आज का हिन्दी गद्य विषय–क्षेत्र की व्यापकता, साहित्य रूपों की विविधता एवं गद्य–शैली की प्रौढ़ता की दृष्टि से अत्यन्त गंभीर, व्यापक और समृद्ध है।

गद्य की विविध विधाएँ

द्विवेदी युग में हिन्दी गद्य का पर्याप्त परिष्कार हुआ और अनेक प्रकार की गद्य विधाएँ भी विकसित हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विविध विकसित राष्ट्रों के साथ सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक सम्पर्क बढ़ जाने से हिन्दी साहित्य में नये–नये तत्त्व विकसित हुए। गद्य शैली और गद्य–विधा का प्रयोग और विकास भी बड़ी तीव्रता से हुआ। औद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और परिवर्तित राजनैतिक व्यवस्था के कारण इस काल के साहित्य की विविध गद्य–विधाओं का अलग–अलग परिचय ही अधिक स्पष्ट और सुगम है।

कहानी– कहानी इस युग की सबसे सशक्त गद्य–विधा है, जिसका विकास बहुत तीव्रता से हुआ है। इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय साहित्य में तो इसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में बताया गया है। इसका स्वरूप निरन्तर बदलता रहा है। कहानी में जीवन की किसी एक घटना का चित्रण रहता है। मानव चरित्र के किसी एक बिन्दु को प्रकाशित करना कहानी का लक्ष्य होता है। इसमें कथावस्तु, पात्र, देश–काल और परिस्थिति का वर्णन रहता है। यह कहानी के प्रमुख तत्त्व कहे ग, हैं। हिन्दी में आधुनिक कहानी का जन्म ई.स. 1901 से माना जाता है– (1) उद्‌भवकाल (1901–1915 ई.), (2) विकासकाल (1916–1935 ई.), (3) उत्कर्षकाल (1936–1950 ई.), (4) प्रगति–प्रयोगकाल (1950 ई.के पश्चात्)। इस अन्तिम काल में युगीन संक्रमण के दबावों के परिणामस्वरूप तनाव, मूल्यों की तलाश तथा विविध सन्दर्भों की कहानियाँ लिखी गई।

एकांकी– आधुनिक एकांकी पाश्चात्य साहित्य की देन है। यह नाटक–साहित्य का वह नाट्य–प्रधान रूप है, जिसके माध्यम से मानव जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य अथवा एक भाव की कलात्मक व्यंजना की जाती है। नाटक और एकांकी में वही अन्तर है जो उपन्यास और कहानी में है। कथावस्तु, पात्र–विधान, संवाद और रंग–संकेत– इसके प्रमुख तत्त्व हैं। एकांकी में स्थान, काल तथा कार्य के संकलन का निर्वाह आवश्यक माना गया है। मानव की असंख्य अभिरूचियों के अनुसार एकांकी के

विषय भी असंख्य होते हैं। हिन्दी एकांकी का वास्तविक आरम्भ ई. स. 1930 से कहा गया है। सामान्यतः जयशंकर 'प्रसाद' के ''एक घूंट'' (1929) को हिन्दी का पहला एकांकी होने का गौरव दिया जाता है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी एकांकी में विषय और शैली की दृष्टि से निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक काल के एकांकी आधुनिक बोध को उजागर करने का प्रयास कर रहे हैं।

निबन्ध – इसका मौलिक अर्थ 'बाँधना' या 'रोकना' होता है। हिन्दी में इसके पर्याय रूप में 'प्रबन्ध', 'लेख', 'रचना', एवं प्रस्ताव शब्द प्रचलित हैं। वास्तव में निबंध उस गद्य–रचना को कहा जाता है जिसमें लेखक निर्वैयक्तिक ढंग से किसी विषय पर प्रकाश डालता है। निबंध अपने मौलिक अर्थ के विपरीत बन्धनहीन है। इसमें लेखक स्वच्छन्दता पूर्वक अपनी बात कहता है। स्वच्छन्दता, सरलता, आडम्बरहीनता और आत्मीयता– निबंध के प्रमुख गुण माने गये हैं। आधुनिक गद्य–युग में निबंध का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। हिन्दी निबंध के विकास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है–

(1) भारतेन्दु–काल (1850–1900), (2) द्विवेदी–शुक्ल–काल (1901–1947), (3) अधुनातन–काल (1948 के पश्चात्)। अन्तिम काल में विचारप्रधान, भावप्रधान, प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक, हास्य–व्यंग्य–प्रधान, वर्णन–प्रधान इत्यादि अनेकविध निबंध लिखे गये हैं। आज हिन्दी में निबंध विधा अपने उच्च शिखर पर है।

रेखाचित्र – जिस प्रकार कोई चित्रकार थोड़ी–सी रेखाओं के द्वारा सजीव चित्र बना देता है, उसी प्रकार थोड़े–से शब्दों में किसी वस्तु अथवा घटना का चित्रण करना रेखाचित्र कहलाता है। रेखाचित्रकार का मुख्य उद्देश्य अपनी शब्द–रेखाओं के द्वारा पाठक में संवेदना जागृत करना होता है। इसमें अनुभूत जीवन का सत्य व्यक्त होता है। रेखाचित्र में एक ही वस्तु–घटना या चरित्र प्रधान होता है, जिससे सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को उभारा जाता है। रेखाचित्र और संस्मरण में विभाजक रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। संक्षेप में रेखाचित्र वस्तुनिष्ठ है और संस्मरण व्यक्तिनिष्ठ। यथार्थ अनुभूति, संवेदनशील दृष्टि, तटस्थता तथा सूक्ष्म निरीक्षण रेखाचित्रकार के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में 1929 में प्रकाशित पण्डित पद्मसिंह शर्मा के ''पद्म पराग'' को इस कला का जनक कहा जाता है। इसके बाद हिन्दी रेखाचित्रों में निरन्तर विकास होता रहा । यह नवीन विधा आज बड़ी तीव्रता से विकसित और समृद्ध हो रही है। इसका भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल है।

संस्मरण – इसमें किसी विशेष व्यक्ति अथवा स्थान की विशेषताओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि वह अपने आप में एक छोटी–सी इकाई बन जाता है। इसमें कहानी, व्यंग्य–विनोद, वर्णन–विवरण, रेखाचित्र आदि का सम्मिश्रण रहता है। यह व्यक्ति अथवा स्थान के गहरे सम्पर्क के आधार पर ही लिखा जा सकता है। संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ होती हैं, जो व्यक्तिगत गहन सम्पर्क का परिणाम होती है। संस्मरण– लेखक केवल महत्त्वपूर्ण बातों को ही ग्रहण नहीं करता, वरन् छोटी–से–छोटी घटना को भी लेकर सूक्ष्मता के साथ अंकित कर देता है। लेखक को तटस्थ किन्तु सहानुभूतिपूर्ण वृत्ति रखनी चाहिए। सूक्ष्म विश्लेषण, सजीव चित्रण–शक्ति, सहानुभूति–पूर्ण हृदय तथा सहज स्वाभाविकता संस्मरण के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में संस्मरण–विधा का उद्भव और विकास रेखाचित्र के साथ ही हुआ है। हिन्दी में प्रसिद्ध साहित्यकारों और महापुरूषों से सम्बन्धित संस्मरण ही अधिक लिखे गये हैं, किन्तु

समाज के अनिवार्य अंग निम्न वर्ग के व्यक्तियों के संस्मरणों का भी विशेष महत्त्व है। हिन्दी का संस्मरण–साहित्य अपने विविध रंगों और साज–सज्जाओं में समृद्ध होता जा रहा है।

आत्मकथा – आत्मकथा– जीवनी का ही एक प्रकार है, जिसमें लेखक स्वयं अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन करता है, और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाता है। आत्मकथा का उद्देश्य आत्मांकन द्वारा आत्मपरिष्कार एवं आत्मोन्नति करना होता है। लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकते हैं। इसमें लेखक अपने जीवन पर जो प्रकाश डालता है उससे युग– विशेष की मानसिक संरचना का भी उसके जीवन के माध्यम से बोध हो जाता है। आत्मकथा लेखन के अनेक खतरे हैं। लेखक को आत्मश्लाघा एवं आत्म – संकोच– दोनों से बचना चाहिये। दोषों के उद्‌घाटन में जहां आत्म–संकोच की प्रवृत्ति बाधक होती है, वहीं आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति उसे अरूचिकर भी बना देती है। तटस्थ रहकर आत्मकथा–लेखक को अपने गुण–दोषों को प्रकट करना चाहिए। हिन्दी में प्राचीनकाल से आत्मकथा–लेखन की प्रवृत्ति प्रचलित है। आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885 ई.) ने आत्मकथा लिखी थी। कालान्तर में अनेक कलात्मक और मनोवैज्ञानिक आत्मकथाएँ लिखी गई, जिनमें स्वाभाविकता, सत्यवादिता तथा निष्कपट आत्मप्रकाशन के गुण विद्यमान हैं।

यात्रा–वर्णन – यात्रा मानव की एक मूल प्रवृत्ति है। ऋतु–परिवर्तन, स्थानों की विविधता, प्रकृति–सौन्दर्य का आकर्षण मानव के मन में उल्लास पैदा करते हैं और इसी उल्लास की भावना से प्रेरित होकर वह यात्रा के लिए निकल पड़ता है। जब कोई साहित्यिक मनोवृत्ति वाला व्यक्ति अपनी मुक्त अभिव्यक्ति को शब्दबद्ध करता है, उसे यात्रा–साहित्य अथवा यात्रा–वर्णन कहते हैं। हमारे देश में यात्री तो अनेकानेक हुए, किन्तु यात्रा–वर्णनों को शब्दबद्ध करने की ओर ध्यान आधुनिक काल में ही गया है। इसीलिए यात्रा–वर्णन आधुनिक गद्य–विधा है। अन्य गद्य–विधाओं की भांति यह विधा भी पाश्चात्य सम्पर्क का ही परिणाम है। इसमें लेखक उन्हीं क्षणों का वर्णन करता है, जिनको वह अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है। वह अपने वर्णन में संवेदनशील होकर भी निरपेक्ष रहता है। अधिकतर यात्रा–वर्णन संस्मरणात्मक साहित्य ही होता है। हिन्दी में भारतेन्दु युग से इसका प्रारम्भ हुआ। युग और भावबोध के परिवर्तन के साथ यात्रा–दृष्टि में भी अन्तर आ जाता है।

रिपोर्ताज – 'रिपोर्ताज' शब्द मूलतः फ्रेंच भाषा का है। दूसरे महायुद्ध के दौरान इसका सर्वप्रथम प्रयोग हुआ। किसी घटना को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर देना ''रिपोर्ट'' कहलाता है, लेकिन उसी को साहित्यिक सरसता तथा कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करना ''रिपोर्ताज'' है। यह रोचक पत्रकारिता का अंग है। समाचार –पत्रों के लिए लिखी गई रिपोर्ट की तरह यह भी तथ्यपरक, तात्कालिक और वस्तुनिष्ठ साहित्य–विधा है। यह आशु कविता की भांति तुरंत, बिना किसी पूर्व तैयारी के, लिखा जाता है। इसमें कल्पना के लिए अधिक अवकाश नहीं रहता। लेखक कथ्य और तथ्य के प्रति सामूहिक प्रतिक्रिया को शब्दबद्ध कर देता है। रोचकता, उत्सुकता, साहित्यिकता और कलात्मकता उत्तम रिपोर्ताज के आवश्यक गुण हैं। हिन्दी में यह नवीन गद्य–विधा अभी विकासोन्मुख अवस्था में है। यह विकास आधुनिक युग में तीव्रता से हो रहा है। दूसरा महायुद्ध, आजाद हिन्द सेना का निर्माण, बंगाल का दुर्भिक्ष आदि के कारण हिन्दी में इस विधा का प्रादुर्भाव हुआ बताया जाता है।

साक्षात्कार – इस विधा के उद्‌भव का कारण पश्चिमी देशों में व्यक्ति–स्वातन्त्रय और व्यक्ति की महत्ता की स्वीकृति है। वैसे तो सभी देश–कालों मे व्यक्ति विशेष का महत्त्व रहा है, किन्तु आधुनिक काल में साधारण मानव के व्यक्तित्त्व की भी अभिव्यक्ति और आत्मानुभूति के प्रकाशन का विशेष अवसर मिला है। इसमें लेखक किसी व्यक्ति से कुछ प्रश्न पूछकर उनके उत्तर पाता है और उन्हें लिखित रूप में प्रकाशित करता है। साक्षात्कार लेने वाला साक्षात्कार देने वाले की परिस्थिति, भाव–भंगिमा तथा व्यवहार से कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकालता है। निष्कर्ष ऐसे होने चाहिए कि जिनसे साक्षात्कार देने वाले के स्वभाव की किसी विशेषता का पता चलता हो और जिन्हें वह स्वीकार भी करता हो। हिन्दी में साक्षात्कार–विधा अंग्रेजी के प्रभाव से आई है। इसका सूत्रपात कब से हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। संवाद, बातचीत, भेंट आदि के नाम से इसे अभिहित किया जाता रहा है, किन्तु एक साहित्य–विधा के रूप में साक्षात्कार का आरम्भ 1952 में डॉ. पद्‌मसिंह शर्मा ''कमलेश'' के द्वारा हुआ। उन्होंने हिन्दी के समकालीन श्रेष्ठ साहित्यकारों से साक्षात्कार लेकर मौलिक कार्य किया है।

हास्य–व्यंग्य – इस विधा का क्षेत्र बड़ा व्यापक और विस्तृत है। सामाजिक और राजनीतिक जीवन के प्रत्येक अंग की विसंगति को अपने व्यंग्य एवं हास्य का लक्ष्य बनाना लेखक का उद्‌देश्य रहता है। इसमें समसामयिक सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, आडम्बर, अवसरवादिता, अंधविश्वास इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों तथा विसंगतियों पर प्रहार करते हुए इन्हें परिहास या व्यंग्य के रूप में अभिव्यक्त करना होता है। इसकी विशेषता यह है कि इस हास्य–व्यंग्य के पीछे विसंगति के परिशोधन का एक मात्र दृष्टिकोण रहता है। इस प्रकार की रचनाओं में शब्दों का अभिधार्थ कुछ और होता है तथा व्यंग्यार्थ कुछ और। यह व्यंग्यार्थ ही इसका वास्तविक अर्थ होता है। इस अर्थ में एक विशेष पैनापन एवं चुटीलापन होता है जो पाठक के मन में कटुता से रहित, संस्कारयुक्त एक मीठी गुदगुदी उत्पन्न करता है। मनोरंजन इसकी प्रधान विशेषता है। हिन्दी में भारतेन्दु युग से ही शिष्ट–हास्य–व्यंग्य–विधा का आरम्भ हुआ है, किन्तु वर्तमान युग में इसने विशेष उन्नति की है। आधुनिक हिन्दी के सफल व्यंग्य– लेखकों में हरिशंकर परसाई का स्थान सर्वोपरि है।

गद्य–काव्य – छन्द– बन्धन–रहित और इतिवृत्तहीन ऐसी भावपूर्ण और कल्पना–प्रधान रचना को गद्य–काव्य कहते हैं, जिसमें बुद्धितत्त्व को विशेष महत्त्व न दिया गया हो। गद्य–काव्य आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण और पुष्ट विधा है। इसमें एक ही केन्द्रीय भाव की प्रधानता रहती है। एक ही सांद्र–अनुभूति या केन्द्रीय भावना की प्रधानता के कारण गद्य–काव्य का आकार छोटा होता है। इसका बाह्य रूप भी साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक लययुक्त, अलंकृत और सधा हुआ होता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि इसका सबसे श्रेष्ठ उदाहरण है। वैयक्तिक आत्मनिष्ठता, तीव्र भावात्मकता, अन्तर्निहित ध्वनि–संगीत, भाव–संकलन और गीति के लिए अपेक्षित भाव–विकास इसकी प्रमुख विशेषताएँ होती है। यों इसके सूत्र वेद–उपनिषद् में खोजे जा सकते हैं, किन्तु आधुनिक युग में मुद्रण की सुविधा और बौद्धिकता के विकास के साथ गद्य–काव्य का भी सूत्रपात हुआ है। हिन्दी में भारतेन्दु युग में ही इस विधा का प्रवर्त्तन हो गया था और आज यह विधा भी पर्याप्त उन्नत हो गई है।

फीचर – पाश्चात्य प्रभाव से आयी हुई यह एक नयी साहित्य–विधा है। यथातथ्य सूचनाओं पर आधारित रचना को फीचर कहा जाता है। हिन्दी में इसे रूपक भी कहा जा सकता है। इसमें रूपक की भांति

दो कथाएँ साथ–साथ चलती है। जिस प्रकार रूपक कथा में प्रस्तुत कथा के अतिरिक्त एक अन्य अप्रस्तुत कथा भी अन्तर्निहित रहती है, उसी प्रकार फीचर में भी किसी स्थान के वर्णन के साथ–साथ एक अतिरिक्त कथा को भी प्रस्तुत किया जाता है। इसमें लेखक का उद्‌देश्य केवल स्थान का परिचय देना मात्र नहीं होता, किन्तु उसके माध्यम से उस स्थान के व्यक्तित्व को समग्र रूप में उद्‌घाटित करना होता है। रूपक–कथाकाव्य की भांति फीचर भी पाठक को एकसाथ दो रूपों में प्रभावित करता है। इसमें सब प्रकार की वास्तविकताओं का नाटकीयकृत रूप उपस्थित किया जा सकता है। हिन्दी में इस विधा का आरम्भ हुए अभी दो–तीन दशक ही हुए है। अभी तो पत्र–पत्रिकाओं के स्तम्भों से ही कलात्मक फीचर प्रकाशित हो रहे हैं। आशा हैं कि शीघ्र ही यह गद्य–विधा हिन्दी–साहित्य में अपना समुचित स्थान बना लेगी।